इकाई 14 'राग दरबारी' में व्यंग्य

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 व्यंग्य की परिभाषा और उसकी विभिन्न छायाएँ

- 14.2.1 शब्दार्थ निरूपण
- 14.2.2 विभिन्न परिभाषाओं के संदर्भ में व्यंग्य
- 14.2.3 व्यंग्य की विभिन्न छायाएँ
- 14.2.4 व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता और उसका साहित्य रूप

14.3 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य का स्वरूप

14.4 'राग दरबारी' का यथार्थ और व्यंग्य शैली की सार्थकता

- 14.4.1 वस्तुस्थितियों तथा मनोभावों के सम्मूर्तन के लिए व्यंग्य
- 14.4.2 गृहीत तथ्यों की पुष्टि के लिए व्यंग्य
- 14.4.3 व्यंग्य के लिए चुनी गयी आंचलिक शब्दावली

14.5 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाएँ

14.6 सारांश

14.7 अभ्यास प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- व्यंग्य शब्द के परम्परागत अर्थ पर विचार करते हुए अंग्रेजी के पर्याय के रूप में उसकी सार्थकता को समझ सकेंगे;
- विभिन्न पाश्चात्य और भारतीय चिंतकों की व्यंग्य संबंधी मान्यताओं से परिचित होते हुए उसकी सर्वसम्मत परिभाषा की कठिनाइयों को जान सकेंगे। साथ ही इस प्रक्रिया में व्यंग्य की महत्वपूर्ण विशेषताओं की चर्चा करते हुए व्यंग्य के सर्वस्वीकृत लक्षणों का भी उल्लेख कर सकेंगे;
- व्यंग्य के व्यापक स्वरूप पर विचार करते हुए उसके विभिन्न घटकों/छायाओं यथा- हास्य, परिहास, उपहास, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश आदि की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे;
- व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता की चर्चा कर सकेंगे; साथ ही इस प्रश्न पर भी विचार कर सकेंगे कि व्यंग्य एक शैली है या स्वतंत्र साहित्यिक विधा;
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य के स्वरूप पर विचार करते हुए उसकी प्रहार और उपहास की प्रवृत्ति से उत्पन्न नकारात्मक-सकारात्मक या ध्वंसात्मक- निर्माणात्मक भूमिका को भी रेखांकित कर सकेंगे;
- 'राग दरबारी' का यथार्थ और व्यंग्य शैली की सार्थकता से परिचित हो सकेंगे; और,
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाओं का निरीक्षण-परीक्षण कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

श्रीलाल शुक्ल और उनके 'राग दरबारी' के अध्ययन के लिए प्रस्तुत इकाई आपके लिए विशेष महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से आप व्यंग्य के सैद्धान्तिक स्वरूप से परिचित होकर उसके उपयोग-दुरुपयोग के मध्य आसानी से अंतर कर सकेंगे। साथ ही एक साहित्यिक अस्त्र के रूप में उसकी शक्ति और सीमाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई के माध्यम से आप की आलोचनात्मक दृष्टि का भी विकास होगा।

'राग दरबारी' एक अत्यंत प्रखर व्यंग्यात्मक उपन्यास है। उपन्यासकार ने समाज के संबंध में अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को कारगर अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए व्यंग्य-शैली का सहारा लिया है। व्यंग्य का अभिप्राय हास्य, मजाक या गाली नहीं है। विश्व साहित्य की परम्परा में इसका प्रयोग निरंतर होता आया है। हिन्दी साहित्य मे भी इसकी एक समृद्ध परम्परा अब तक गतिमान रही है। कबीर जैसे प्रखर व्यंग्यकार ने इस अस्त्र के प्रयोग द्वारा बहुसंख्यक जनता के शत्रुओं को हिलाकर रख दिया था। भारतेन्दु और उनके मण्डल के अधिकांश साहित्यकारों ने इसका अत्यंत सधा हुआ प्रयोग किया था। भारतेन्दु के बाद निराला, नागार्जुन जैसे सशक्त कवियों ने अपनी कटु-तिक्त मानसिक प्रतिक्रियाओं को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इन कवियों की वास्तविक ऊर्जा व्यंग्य के माध्यम से ही पाठक के सामने आती है। इसके माध्यम से इन कवियों ने सामाजिक-राजनीतिक सुधार का एक जोरदार अभियान चलाया था। अब तक हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्र नाथ त्यागी, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन इस परम्परा को आगे बढ़ाते आए हैं। श्रीलाल शुक्ल इस परम्परा की एक सशक्त कड़ी के रूप में हमारे सामने आते हैं। इनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं से हम इस खंड की इकाई सं० 13 की प्रस्तावना में परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में व्यंग्य के मान्य आधारों पर हम 'राग दरबारी' का निरीक्षण-परीक्षण करेंगे।

अपनी अतिशय व्यंग्यात्मकता के कारण कुछ आलोचकों/पाठकों ने 'राग दरबारी' को चुहलबाजी और उपहास की मुद्रा से ओत-प्रोत उपन्यास बताया है और इसमें सामाजिक दृष्टि का अभाव, नकार और अस्वीकार भावना की अधिकता की ओर संकेत किया है। बावजूद इसके यह एक यथार्थवादी रचना है, जो सार्वदेशिक भ्रष्ट व्यवस्था की कलई उतार कर नयी व्यवस्था की अनिवार्यता को रेखांकित करती है। यह नयी व्यवस्था क्या होगी, इसका सूत्रपात कौन और कैसे करेगा, इसे पाठक के सामाजिक सरोकार पर छोड़ दिया गया है। अपनी सह-स्वाभाविक शैली में रचित यथार्थवादी उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचंद ने भी यही किया है। आगे चलकर श्रीलाल शुक्ल ने अपने 'पड़ाव' शीर्षक उपन्यास में सत्ते उर्फ मुंशी के माध्यम से और 'बिस्रामपुर का संत' में विवेक के माध्यम से परिवर्तन की एक प्रणाली का संकेत अवश्य किया है, लेकिन इसे श्रीलाल शुक्ल के बाद के सामाजिक दृष्टिकोण का परिचायक माना जा सकता है। 'राग दरबारी' को पढ़कर कोई भी पाठक यह नहीं सोचेगा कि जो स्थिति है, वही बनी रहेगी या इसमें कोई परिवर्तन संभव है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर हम विभिन्न पहलुओं पर अनेक कोणों से विचार करने के बाद 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाओं, उसके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार करेंगे।

14.2 व्यंग्य की परिभाषा और उसकी विभिन्न छायाएँ

14.2.1 शब्दार्थ निरूपण

व्यंग्य संस्कृत भाषा का काव्यशास्त्रीय शब्द है, जिसका कोषगत अर्थ 'व्यंजित होने वाला' है। शब्द-व्यापार और शब्द-शक्तियों के विवेचन-विश्लेषण में व्यंग्य अभिधा, लक्षणा से आगे

व्यंग्यार्थ के रूप में व्यंजना के क्षेत्र में चला जाता है। व्यंजना शब्दार्थ की वह शक्ति है, जो अभिधा और लक्षणा शक्तियों से आगे बढ़कर एक विलक्षण अर्थ का बोध कराती है। अत: इसे अभिधागत वाच्यार्थ और लक्षणागत लक्ष्यार्थ से भिन्न व्यंजनागत व्यंग्यार्थ के रूप में पूर्व-स्वीकृति प्राप्त है। संस्कृत और हिंदी आलोचना में भी व्यंजना के साथ ही व्यंग्यार्थ शब्द भी परम्परागत अर्थ में ही प्रयुक्त होता रहा है। लेकिन व्यंग्य को अंग्रेजी के 'सेटायर' के अर्थ में अब पूर्णत: स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। कुछ विद्वानों ने व्यंग्य शब्द को संस्कृत में चले आ रहे परंपरागत अर्थ के लिए नियत मानकर 'सेटायर' के लिए 'व्यंग' शब्द के प्रयोग का प्रस्ताव किया था, लेकिन इसे स्वीकृति नहीं मिली। संस्कृत का 'व्यंग' शब्द खण्डित अंग, विकलांग, लंगड़, अव्यवस्थित आदि अर्थों का भी सूचक है। अत: 'सेटायर' के लिए 'व्यंग्य' शब्द सर्वथा उपयुक्त है। कारण अंग्रेजी में 'सेटायर' या हिन्दी में आलोचना में व्यंग्य शब्द अब कोई अलग इकाई न होकर अपनी अनेक छायाओं - जैसे हास्य, उपहास, वाग्दंश कटूक्ति आदि को अपने समेटे हुए है। अत: 'राग दरबारी' के संबंध में जब हम व्यंग्य शब्द का प्रयोग करेंगे तो उसमें इसकी सभी छायाएँ समाहित होगी।

14.2.2 विभिन्न परिभाषाओं के संदर्भ में व्यंग्य

साहित्य में प्रयोग की दृष्टि से पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतकों ने व्यंग्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। लेकिन यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि प्रत्येक परिभाषाकर्ता ने अपने जीवन-दर्शन, जीवन-दृष्टि, अपने वैयक्तिक चरित्र, अपनी अपेक्षाओं-आकांक्षाओं, मानव समाज और साहित्य से सम्बद्ध अपनी मान्यताओं के अनुरूप ही व्यंग्य को परिभाषित करने की चेष्टा की है। यहाँ पहले हम कुछ पाश्चात्य चिंतकों की व्यंग्य संबंधी मान्यताओं पर विचार कर लें तो अधिक अच्छा होगा।

व्यंग्य के संबंध में **ए. निकोल** की मान्यता है कि 'हास्य के अभाव में व्यंग्य इतना कटु होता है कि वह मात्र चोट करता हैं। उसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता। दया, करुणा, उदारता से वह विरहित होता है। युग की पूरी रीति-नीति पर अक्षम्य भाव से टूट पड़ता है। लेकिन अधिकांश पाश्चात्य चिंतक निकोल की इस मान्यता से असहमत हैं। मेरिडिथ का तो यहाँ तक मानना है कि 'व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है वह बहुधा समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है।' **हैरी शॉ** ने व्यंग्य के नैतिक पक्ष पर अधिक जोर देते हुए उसे कटाक्ष, उपहास, वक्रोक्ति आदि के मिश्रण से मानवीय क्रियाकलापों तथा संस्थाओं की आलोचनात्मक व्याख्या करने वाला बताया है। 'व्यंग्य में सामान्यतया नैतिक चिन्ता तथा किन्हीं तौर-तरीकों, विश्वास अथवा परंपरा में सुधार लाने की प्रबल अकांक्षा - दोनों ही भाव विद्यमान रहते हैं। 'व्यंग्य पर सार्थक चिन्तन करने वाले **जोनाथन स्विफ्ट** के अनुसार व्यंग्य एक ऐसा शीशा है, जिसमें देखने वाले को अपने सिवा हर किसी का चेहरा नज़र आता है। यही कारण है कि संसार में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा बहुत कम लोग इससे आहत होते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं पर ध्यान से विचार करें तो वे पाश्चात्य समाज और वहाँ के साहित्य की स्थिति को ध्यान में रखकर निर्मित लगती हैं। लेकिन उसमें आक्रोश, आक्रामकता, उपहास, सुधार आदि सामान्य रूप से व्यंग्य के आवश्यक उपकरण के रूप में आए हैं। इसके साथ ही नैतिकता का आग्रह भी उसमें प्राय: सर्वत्र दिखायी देता है। यहाँ हम कुछ वामपंथी चिन्तकों के व्यंग्य संबंधी मान्यताओं की ओर भी ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे। इस दृष्टि से **ए. लूनाचार्स्की** की मान्यता विचारणीय है। उसने प्रसिद्ध व्यंग्यकार जोनाथन स्विफ्ट की रचनाधर्मिता पर विचार करते हुए व्यंग्य के स्वरूप तथा उद्देश्य का भी विश्लेषण किया है। उसने भी व्यंग्य के नैतिक पक्ष पर बल दिया है। लेकिन उसने शत्रु पर किए गए व्यंग्य के संदर्भ में नैतिकता का उल्लेख किया है। उसकी मान्यता है कि व्यंग्य पाठक को यह अहसास दिलाता है कि आप विजयी और शत्रु कमजोर है, शोचनीय है और आप उसे हँसी में उड़ा सकते हैं। इस तरह नैतिक स्तर पर आप शत्रु से श्रेष्ठ हो जाते हैं।.....इस तरह व्यंग्य की विजय नैतिक विजय

होती है,' वास्तविक विजय नहीं। वस्तुत: व्यंग्य लोगों को नैतिक स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली, दुष्टों से श्रेष्ठ सिद्ध कर उनमें आत्मविश्वास पैदा करता है तथा बुराइयों और दुर्गुणों से लड़ने के लिए प्रेरित करता है। यहाँ व्यंग्य की आक्रामकता और लड़ाकूपन के संदर्भ में नैतिकता को व्याख्यायित किया गया है। मतलब शत्रु संहारक कार्य के बावजूद भी उसमें नैतिकता निहित होती है।

प्रसिद्ध राजनीतिवेत्ता मावो त्से-तुंग ने व्यंग्य के क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाते हुए उसकी स्थिति पर और अधिक तर्कसंगत ढंग से विचार किया है। साहित्य के अंतर्गत व्यंग्य की सार्थकता को स्वीकार करते हुए उन्होंने ल्यूसुन को एक आदर्श व्यंग्यकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसके लिए उन्होंने समाज-स्थिति, वर्ग-स्थिति, परिवेश और तात्कालिक आवश्यकता को ध्यान में रखने की सिफारिश की है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि व्यंग्य शत्रु पर भी किया जाता है और मित्र पर भी लेकिन इनकी प्रवृत्ति और तेवर में अंतर की तमीज व्यंग्यकार को होनी चाहिए। अपने 'कला, साहित्य और संस्कृति' शीर्षक ग्रंथ में इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'अपने साथियों के साथ दुश्मनों जैसा व्यवहार करने का मतलब होगा शत्रु के दृष्टिकोण को अपनाना। तो क्या हम व्यंग्य को खत्म कर डालें? नहीं। व्यंग्य का रहना हमेशा आवश्यक है। लेकिन व्यंग्य कई किस्म के होते हैं और हर व्यंग्य का रवैया अलग-अलग होता है। जैसे, अपने दुश्मनों के लिए व्यंग्य, अपने सहकर्मियों के लिए व्यंग्य, अपनी पाँतों के लिए व्यंग्य। हम सामान्य रूप से व्यंग्योक्ति का विरोध नहीं करते, लेकिन जिस चीज को हम खत्म करन चाहते हैं, वह है व्यंग्योक्तियों का दुरुपयोग।' (पृ० 73-74) - इससे स्पष्ट है कि व्यंग्य का एकमात्र रुख आक्रामकता और लड़ाकूपन ही नहीं है, जैसा कि अधिकांश चिन्तकों ने माना है। अपने इस रुख के अन्तर्गत वह शत्रुओं का सुधार नहीं कर सकता, उसे समाप्त करना ही उसका उद्देश्य होना चाहिए। दूसरी ओर अपने सहयोगियों, मित्रों और पिछड़ी चेतना के सर्वहारा जनगण पर व्यंग्य करते हुए उनमें सुधार, उन्हें शिक्षित करने की हार्दिक उत्सुकता आवश्यक है। यहाँ व्यंग्य की आक्रामकता और सुधार-क्षमता को अलगाने का प्रयास किया गया है।

पाश्चात्य विद्वानों के साथ ही हिन्दी समीक्षकों ने भी व्यंग्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से शेरजंग गर्ग, बरसाने लाल चतुर्वेदी, आदि समीक्षकों के साथ ही हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, जी.पी. श्रीवास्तव आदि व्यंग्यकारों ने भी व्यंग्य की वास्तविकता को उद्घाटित करने की चेष्टा की है। इस संबंध में शेरजंग गर्ग की मान्यता है कि "व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निन्दा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णत: सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है।.....व्यंग्य में आक्रमण की स्थिति अनिवार्य है।" यहाँ आक्रामकता को व्यंग्य का अनिवार्य तत्व मानते हुए उसे हास्य से अलगाने का प्रयास दिखायी देता है। लेकिन आक्रामकता केवल व्यंग्य के शत्रुतापूर्ण रुख में ही निहित है। अपनी पाँतों पर, मित्रों पर व्यंग्य करते हुए इसकी अनिवार्यता नहीं रहती, जैसा कि मावो त्से-तुंग की मान्यता से स्पष्ट होता है। हिन्दी के प्रखर व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को आक्रामकता नहीं, वरन् सहानुभूति का उत्कृष्ट रूप मानते हुए लिखा है, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है। विसंगति, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।.....अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"

श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य के वास्तविक स्वरूप का एक नये कोण से उद्घाटन करते हैं। उनकी मान्यता है कि व्यंग्य सत्य की खोज नहीं, झूठ की खोज है। यही उसका पेंचदार रास्ता है। झूठ की खोज के सहारे या उसके बहाने ही यहाँ सत्य को पहचानने की प्रक्रिया चलती है।" कबीरदास के व्यंग्य का मर्मोद्घाटन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो, फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता

है।'' आधुनिक हिन्दी भाषा में इधर व्यंग्य को हास्य का सहायक मानने की प्रवृत्ति कम हुई है। इसे एक दायित्वपूर्ण तथा चुनौतीपूर्ण कार्य करने मानने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस दृष्टि से गुलाम अहमद 'फुरकत' की यह मान्यता अत्यंत महत्वपूर्ण है, ''व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य सोसायटी की बुराइयों, कमजोरियों और त्रुटियों की हँसी उड़ाकर पेश करना है, मगर इसमें तहजीब का दामन मजबूती से पकड़े रहने की जरूरत है, वरना व्यंग्यकार भड़ैती की सीमाओं में प्रवेश कर जाएगा।'' वस्तुत: ये सारी मान्यताएँ चिन्तकों की अपनी रुचि-अरुचि और अपनी स्वयं की वर्ग स्थिति के साथ ही हिन्दी साहित्य में व्यंग्य की स्थिति के आधार पर निर्मित उनकी मानसिक प्रतिक्रियाएँ हैं। इनमें वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठता या आत्मनिष्ठता का योग अधिक है।

इस सभी पाश्चात्य और भारतीय मान्यताओं के आधार पर व्यंग्य की एक निश्चित परिभाषा निर्धारित करना कठिन है। समाज और वर्ग स्थिति की सापेक्षता तथा व्यंग्यकार के स्वयं के जीवन-दर्शन और समाज-दर्शन या सामाजिक दृष्टि के आधार पर व्यंग्य के लक्षण और उसकी विशेषताएँ भिन्न हो जाती हैं। इल भिन्नताओं के बावजूद आक्रामकता, विनोदात्मकता, सुधार अथवा परिवर्तनपरक सामाजिक सोद्देश्यता व्यंग्य के सर्वस्वीकृत लक्षण या तत्व माने जा सकते हैं। व्यंग्य के अनेक उपकरण या उसकी छायाएँ हैं, जिनकी सम्यक् जानकारी के बिना हम उसके वास्तविक अभिप्राय और उसकी सार्थक भूमिका को नहीं समझ सकते। अत: आगे उसकी विभिन्न छायाओं पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

14.2.3 व्यंग्य की विभिन्न छायाएँ

व्यंग्य एक व्यापक पारिभाषिक शब्द है, जिसका दायरा अत्यंत विस्तृत है। यदि इसे साहित्य की एक शैली के रूप में स्वीकार किया जाए तो यह प्राचीन भारतीय काव्य शास्त्र में अलंकार शब्द की तरह अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है। अलंकार के अन्तर्गत, जिस प्रकार उपमा, रूपकादि साम्यमूलक और विरोधाभास, प्रतीक आदि की तरह विरोधमूलक अर्थालंकारों के साथ ही श्लेष, अनुप्रास आदि शब्दालंकार भी आते हैं, उसी तरह व्यंग्य के अन्तर्गत, उसके सहायक के रूप में बहुत सारे साहित्यिक उपकरण भी आते हैं। इस दृष्टि से हास्य, उपहास, परिहास, वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश, कटाक्ष, कटूक्ति, पैरोडी, आक्षेप, अतिरंजना, अपकर्ष आदि उल्लेखनीय हैं। इन्हीं के माध्यम से व्यंग्य शैली का ढाँचा निर्मित हुआ है।

व्यंग्य की छाया या उपकरण के रूप में हास्य, उपहास और परिहास की स्थिति सर्वप्रथम विचारणीय है। हास्य (ह्यूमर) का उद्देश्य असंबद्धता और बेढंगपन के उल्लेख से आनंद या मजा उत्पन्न करना है, जबकि उपहास (रिडीक्यूल) का उद्देश्य तुच्छता या तिरस्कारमूलक मजाक या खिल्ली उड़ाना है। हास्य और उपहास से भिन्न परिहास चुटकी, मजा या मसखरी से जुड़ा हुआ, उसका एक अपरिष्कृत रूप है। इसी प्रकार व्यंग्य के सहायक के रूप में वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध (विट) और वाग्दंश भी व्यंग्य के विभिन्न उपकरण हैं। वक्रोक्ति के लिए विडंबना शब्द का प्रयोग करते हुए उसे अंग्रेजी के 'आइरनी' शब्द के पर्याय के रूप प्रतिष्ठित किया गया है। यह भारतीय काव्यशास्त्र में एक काव्य-सिद्धान्त के साथ ही एक विशिष्ट अलंकार के रूप में भी मान्यता प्राप्त शब्द है। इसके अन्तर्गत वास्तविक अभिप्राय को दर्शाने के लिए सुर एवं शैली को कुछ इस प्रकार घुमा-फिरा दिया जाता है कि उसमें एक चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। इसे उक्ति-चमत्कार की भी संज्ञा दी जाती है। आजकल वक्रोक्ति के स्थान पर प्राय: विडम्बना शब्द का प्रयोग किया जाता है। वाग्वैदध्य (विट) एक प्रकार से असंगतों के मध्य संगति दिखाकर मूल अभिप्राय को चतुराई से अभिव्यक्त करने की एक कला है। इसे समझ की तीव्रता, हाजिरजबाबी और प्रत्युत्पन्नमतित्व के साथ जोड़कर भी देखा जा सकता है। इसके माध्यम से व्यंग्य की गरिमा के साथ ही उसकी प्रहारक्षमता में भी वृद्धि होती है। कटाक्ष (सरकाज़्म) तानाकशी, छींटकशी, व्यंग्योक्ति आदि कई अर्थों में प्रयुक्त होता है।

प्रहारात्मकता या आक्रात्मकता इसकी प्रमुख विशेषता है। जिसमें करुणा, सहानुभूति आदि के लिए कोई स्थान नहीं होता। यह एक प्रकार से कटु और कठोर उपहास ही है। व्यंग्य में

जिसका उपयोग प्राय: शत्रु वर्ग के लिए होता है। वाग्दंश (सारडोनिक) की मूलभूत विशेषता असह्य कटुता है। वाणी द्वारा डँसना (काटना) या विषाक्त वाणी के अभिप्राय को भी इस शब्द द्वारा व्यंजित किया जाता है। कटाक्ष की तरह इसकी भी क्षमता प्रहार के लिए अधिक होती है। इसका प्रहार भी शत्रुपक्ष पर ही होता है।

कटूक्ति, पैरोडी, आक्षेप (लैम्पून), अतिरंजना, अपकर्ष आदि भी व्यंग्यकार के तरकश के तीर हैं। कटूक्ति का अभिप्राय शब्दार्थ से पूरी तरह व्यक्त हो जाता है। अंग्रेजी के 'सिनिसिज्म' का पर्याय कटूक्ति में आचरण के पूर्वनिर्धारित मानदण्डों - ईमानदारी, नैतिकता आदि के प्रति संदेह और आशंका की भावना निहित होती है। अत: इसके अन्तर्गत प्रतिष्ठित मर्यादा के उपहास का भाव भी समाहित होता है। पैरोडी अंग्रेजी का शब्द है जिसका अर्थ है कि मूल रचना या पंक्ति के शब्दों को उलट-पलट कर चमत्कारपूर्ण हास्य की सृष्टि करना। वस्तुत: इसके अन्तर्गत किसी रचना की शैली, छंद, तुक, ताल, लय की विशेषताओं के ग्रहण के बावजूद कुछ शब्दों को स्थानापन्न बनाकर एक पुनर्रचना की जाती है, जिससे समूचा अर्थ बदल जाता है। इसके लिए 'राग-दरबारी' से ही एक स्पष्ट उदाहरण लेना अधिक उपयुक्त होगा :

मूल - लेके पहला-पहला प्यार, भर के आँखों में खुमार,
जादू नगरी से आया है कोई जादूगर।,

पैरोडी - लेके पहला-पहला प्यार, तज के ग्वालों का संसार,
मथुरा नगरी से आया है, कोई वंशीधर।

आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि श्रीलाल शुक्ल का रचनात्मक लेखन छात्र जीवन की एक ''पैरोडी'' से हुआ था। एक प्रसिद्ध प्रयाण-गीत की 'पैरोडी' उन्होंने इस प्रकार की थी :

मूल - खिदमते हिन्द में जो कि मर जाएँगे।
नाम दुनिया में अपना भी कर जाएँगे।।

पैरोडी - हम बिना बाथरुम के मर जाएँगे।
नाम दुनिया में अपना भी कर जाएँगे।।
यह न पूछो की मरकर किधर जाएँगे।।
होगा पानी जिधर हम उधर जाएँगे।।

हास्टल में पानी की दिक्कत को लेकर लिखी गई यह 'पैरोडी' लेखक की व्यंग्य लेखन के प्रति आरम्भिक रुझान को व्यक्त करती है।

'पैरोडी' से भिन्न आक्षेप द्वेषपूर्ण व्यक्तिगत आरोप होता है, जिसमें तिरस्कार करने या बदला लेने की भावना प्रमुख होती है। इसका उद्देश्य अपने अहम् की तुष्टि के साथ ही शरारत के लिए चोट पहुँचाना है। अतिरंजना में असंगति और विद्रूपताओं को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाता है, जिसका झुकाव बद-से-बदतर की ओर होता है। जबकि अपकर्ष में लक्ष्य को तुच्छ और निन्दनीय बताकर उसका तिरस्कार करते हुए खिल्ली उड़ाई जाती है। इन तमाम सारे उपकरणों/माध्यमों के सहारे व्यंग्यकर्ता अपनी व्यंग्यात्मक शैली का नियोजन करता है। व्यंग्य की इन छायाओं/उपकरणों की जानकारी के बाद आप आसानी से व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता को समझ सकते हैं।

14.2.4 व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता और उसका साहित्य रूप

व्यंग्य के शब्दार्थ निरूपण के साथ ही उसे परिभाषित करने की प्रक्रिया में उसकी सामाजिक उपयोगिता को स्थान-स्थान पर रेखांकित करना पड़ा है। यहाँ व्यंग्य की साहित्यिक और सामाजिक उपयोगिता पर पुन:संक्षेप में विचार कर लेना आपके लिए अधिक उपयोगी होगा।

वर्ग विभाजित विषमताग्रस्त समाज में शोषण, अन्याय, असमानता, स्वार्थपरता आदि बुराइयों ने अराजकता और मूल्यहीनता की भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी है। ऐसी स्थिति में समाज की बहुसंख्यक जनता अपने को वंचित और उत्पीड़ित महसूस करती है। इसके निदान के लिए जिस प्रकार सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन अनिवार्य हैं, उसी प्रकार साहित्य के मोर्चे से भी आन्दोलन होते रहे हैं। इस प्रकार के आन्दोलनों में साहित्य के अधिकांश नेतृत्वकर्ताओं ने अपनी वर्गीय पक्षधरता का भी परिचय दिया है। हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन निर्गुण भक्ति से भक्ति का आन्दोलनकारी रूप प्रत्यक्ष रूप से उद्घाटित हुआ है। इसके नेतृत्वकर्ता कबीर की वाणी ने व्यंग्य का जो आक्रामक रूप धारण किया था - वह हमारे लिए एक मिसाल है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के सूत्रपातकर्ता भारतेन्दु बाबू हरिशचंद्र की वाणी ने ब्रिटिश शासन के साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त अन्याय, अनाचार, धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास, सामाजिक भेदभाव आदि पर अत्यंत प्रखर व्यंग्यबाणों का संचालन किया है। छायावाद के प्रमुख स्तम्भ निराला के व्यंग्यवाणों की धार कभी कुंठित नहीं होने पायी। प्रगतिशील साहित्यान्दोलन से जुड़े अधिकांश कवियों-कलाकारों ने प्राय: व्यंग्य का सहारा लिया है। त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल के साथ इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्व नागार्जुन का है। इन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत की अनाचार और अन्यायकारी शक्तियों पर गिन-गिन कर चोटें की हैं। इसके साथ ही स्वातंत्र्योत्तर शासनतंत्र की जनविरोधी नीतियों का पर्दाफाश करने से कभी चूके नहीं। वस्तुत: इन व्यंग्यकर्ताओं ने एक साहित्यकार के रूप में अपने सामाजिक दायित्व को अत्यंत कारगर ढंग से निबाहा है। अत: साहित्य की सामाजिक उपयोगिता को व्यंग्य के माध्यम से अधिक असरदार बनाने का प्रयास किया गया है।

स्वातत्र्योत्तर काल में स्वतंत्रता, लूट-खसोट और मनमानी की स्वतंत्रता का पर्याय बनी। सत्तालोलुप अवसरवादी राजनीति के कारण न्याय-व्यवस्था और प्रशासन-व्यवस्था - दोनों की चूलें हिल गयी। समाज में असमानता, अन्याय, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद की प्रवृत्ति को खुलकर खेलने की छूट मिली। इस अराजक व्यवस्था ने आम आदमी, विशेषकर किसान-मजदूर और पिछड़ी हुई अछूत और छोटी समझी जाने वाली जातियों के जीवन को दूभर कर दिया। ऐसे में बहुत से सामजिक-राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने सक्रिय विरोध, धरना, असंतोष प्रदर्शन आदि का मार्ग ग्रहण किया। साहित्य के मोर्चे पर सक्रिय और सामाजिक चेतना से सम्पन्न चिन्तक-कलाकारों में से कुछ अधिक संवेदनशील लोगों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य शैली का सहारा लिया। नागार्जुन, केदारनाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, अमृतलाल नागर, लतीफ घोंघी, धूमिल, सर्वेश्वर दयाल, श्रीलाल शुक्ल आदि के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। आज के संदर्भ में इनकी सामाजिक उपयोगिता निर्विवाद है। इनकी व्यंग्य-योजना मात्र सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों का पर्दाफाश ही नहीं करती, वरन् जागरण और समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा भी देती है। व्यंग्यकर्ता का कार्य एक प्रकार से साहित्य के मोर्चे पर धरना या विरोध प्रदर्शन ही है।

जहाँ तक व्यंग्य की साहित्यिक उपयोगिता का प्रश्न है, वह अभिव्यक्ति को प्रखर और अधिक प्रभावशाली बनाता है। इसके साथ ही व्यंग्य अशिष्ट गाली-गलौज या भड़ैती न होकर एक शिष्ट और परिष्कृत आलोचना है, जो उसे साहित्य का रूप देती है। लेकिन साहित्य का परम शुद्धता के कट्टर समर्थकों की भाँति हमें साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की ऐसी कसौटी भी नहीं निर्मित कर लेनी चाहिए कि आक्रोशपूर्ण आक्रामकता और विद्वेषजनित व्यंग्योक्तियों को ही साहित्य के क्षेत्र से निष्कासित करना पड़ जाए। वस्तुत: सामाजिक विषमता एवं विद्रूपता की विसंगतियों से झकझोरा हुआ व्यक्ति जब अपने को व्यंग्योक्तियों के माध्यम से व्यक्त करने लगता है तो शिष्टता के पूर्वनिर्धारित मानदण्ड भी खण्डित होने लगते हैं। कबीर बौखलाहट की दशा में पहुँचकर कहते हैं :

तू बामन बामनि का जाया, तो आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।

अथवा

जो तू तुरुक तुरकनी जाया, अन्दर खतना क्यों न कराया।

इस प्रकार की तमाम उक्तियों को अगर कबीर के साहित्य से निकाल दिया जाए तो उनका व्यंग्यकार रूप हमारी आँखों से ओझल हो जाएगा। नागार्जुन के काव्य में आई इस प्रकार की अनेक व्यंग्योक्तियाँ हैं। यथार्थ की नग्नता के चित्रण में श्रीलाल शुक्ल ने भी कहीं-कहीं ऐसा ही रुख अपनाया है। उस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। साहित्य की सीमाओं का कुछ अंश तक अतिक्रमण करने के बावजूद यदि उसकी सामाजिक उपयोगिता बढ़ती है तो हमें इस प्रकार के अतिक्रमणों को स्वीकार करना पड़ेगा। इसके लिए हमें एलेक्ज़ेण्डर बेन के 'यूजेज और एब्यूजेज' शीर्षक ग्रंथ के साथ ही मलय द्वारा लिखे गए ग्रंथ- 'व्यंग्यका का सौन्दर्यशास्त्र' की कतिपय मान्यताओं को ध्यान में रखना पड़ेगा। अत: व्यंग्य के औचित्य-अनौचित्य, उसकी शिष्टता-अतिशिष्टता, साहित्यिकता-असाहित्यिकता का निरीक्षण-परीक्षण करते समय हमें व्यंग्यकार के लक्ष्य, व्यंग्य की सामाजिक उपयोगिता, उसकी प्रभाव-क्षमता पर भी पूरा ध्यान देने की जरूरत है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर ही हम आगे 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य के स्वरूप पर विचार करेंगे। लेकिन इससे हमें इस प्रश्न पर भी विचार कर लेना चाहिए कि व्यंग्य साहित्य की एक शैली है या स्वतंत्र विधा।

वैसे देखा जाए तो हिन्दी में व्यंग्य की परंपरा का सूत्रपात अभिव्यक्ति की एक शैली के रूप में ही हुआ है। कबीर, भारतेन्दु से लेकर निराला, नागार्जुन आदि सभी कवि-गद्यकारों ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य शैली का उपयोग किया है। कबीर ने अपनी कविताओं में इसका उपयोग किया है, जबकि भारतेन्दु ने कविताओं के साथ ही मुख्य रूप से इसका उपयोग अपने नाटकों और निबंधों में किया है। 'निराला' के यहाँ कविता, कहानी, उपन्यास आदि सभी विधाओं में इसका उपयोग हुआ है। नागार्जुन ने भी इसे शैली के रूप में मुख्य रूप से अपनी कविताओं में ही प्रयुक्त किया है। वर्तमान युग में हिन्दी के कुछ रचनाकार सामने आए हैं, जिन्होंने इसे स्वतंत्र विधा के रूप में भी अपनाया है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, लतीफ घोंघी के साथ ही श्रीलाल शुक्ल के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इनकी बहुत सी रचनाओं को यदि निबंध, कहानी, जीवनी, लघुकथा आदि पूर्वस्वीकृत विधाओं में समाविष्ट नहीं किया जा सकता तो निश्चय ही व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्वीकृति देनी होगी।

व्यंग्य को शैली और साहित्य-विधा मानने के प्रश्न को लेकर अंग्रेजी साहित्य में विवाद रहा है, लेकिन वहाँ उसे विधा के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। बावजूद इसके 'इंगलिश सेटायर' पर महत्वपूर्ण कार्य करने वाले आलोचक **जेम्स सदरलैण्ड** जैसे प्रखर चिन्तकों को यह मानना पड़ा है कि "यदि मैं अपने अध्ययन को केवल उन रचनाओं तक सीमित रखता जो आदि से अंत तक व्यंग्यात्मक हैं, तो मुझे अंग्रेजी साहित्य के प्रखरतम और विचक्षणतम व्यंग्य को छोड़ देना पड़ता।" हिन्दी का कोई भी व्यंग्य रचयिता कबीर और नागार्जुन से प्रखर और विचक्षण व्यंग्यकार नहीं हुआ है। इस स्थिति और विशेष रूप से हिन्दी साहित्य में व्यंग्यकारों की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखकर हमें जहाँ एक ओर व्यंग्य को एक सशक्त शैली के रूप में मान्यता देनी पड़ेगी, वहीं उसे विधा के रूप मे भी स्वीकृति देनी पड़ेगी। इसमें कोई अन्तर्विरोध नहीं है।

14.3 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य का स्वरूप

किसी रचना में प्रयुक्त व्यंग्य का निर्धारण करते हुए रचनाकार के लक्ष्य, उसकी हार्दिक आशा-आकांक्षा, उसके सामाजिक सरोकार, उसकी मूल्य-चेतना, तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक स्थिति-परिस्थिति को केन्द्र में रखना आवश्यक है। सामाजिक विषमताओं और विकृतियों के गहरे संकट के दौर में जहाँ उसका व्यंग्य निर्मम, आक्रामक और ध्वंसात्मक होगा,

वहीं प्रगतिशील समाज के विकास और स्वस्थ जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के वातावरण में उसका रुख अधिक सकारात्मक और रचनात्मक होगा। इस दृष्टि से देखें तो श्रीलाल शुक्ल के सम्मुख भारत की स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनैतिक स्थिति-परिस्थिति मूलाधार के रूप में रही है। पिछले बीस वर्षों के तथाकथित विकास के बाद राजनीति और समाज में जो कुछ फल-फूलकर तैयार हुआ है, वह ठीक नहीं है - इस मान्यता को लेकर उपन्यासकार 'राग दरबारी' की रचना में प्रवृत्त हुआ है। अत: तत्कालीन वास्तविकता को बेनकाब करना ही उसका प्रमुख लक्ष्य रहा है।

अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए उपन्यासकार ने देश की समूची स्थिति-परिस्थिति पर चौतरफा आक्रमण किया है। स्वतंत्रता, जनतंत्र, बहुमुखी विकास, सहकारिता, पंचायत-व्यवस्था के साथ खिलवाड़ करने वाले समाज के दुष्ट और निहित स्वार्थी चरित्र वाले तत्वों को बेनकाब करते हुए उपन्यासकार ने निर्मम आक्रमण किया है। इस आक्रमण में उपहास, विडम्बना, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश, कटाक्ष आदि व्यंग्य के अधिकांश उपकरणों का सहारा लिया गया है। लोकतंत्र को झूठतंत्र ही नहीं, लूटतंत्र में परिवर्तित करने वाले तत्वों के काले कारनामों को दिखाने के लिए शिवपाल गंज को चुना गया है। वस्तुत: यहाँ शिवपाल गंज और उसके अधिनायक वैद्य जी ऐसे सशक्त प्रतीक हैं, जो पंचायत व्यवस्था, कॉलेज का प्रबंध, कोऑपरेटिव यूनियन का प्रबंध, थाना-पुलिस व्यवस्था ही नहीं न्याय व्यवस्था को भी अपनी मुट्ठी में बंद किए हुए हैं। इस जकड़न में छटपटाता यथार्थ इतना भयावह और विद्रूप है कि उसे देखना एक त्रासद ही नहीं घिनौने अनुभव से गुजरना है।

इस खण्ड की पहली इकाई के अन्तर्गत 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यास का परिचय देते हुए आपके सम्मुख हमने इस तथ्य को संकेतिक किया कि कुछ आलोचकों ने चुहलबाजी और उपहास की मुद्रा की भरमार के कारण 'राग दरबारी' पर सामाजिक दृष्टि के अभाव का आरोप लगाया है। वस्तुत: चुहलबाजी हास्य और परिहास का आधार है, जो किसी रचना को बोझिल और नीरस होने से बचाता है। जहाँ तक उपहास का प्रश्न है, वह नकारात्मक ही नहीं, परोक्ष रूप से सकारात्मक भूमिका का भी निर्वाह करता है। उपहास की सकारात्मक रचनाधर्मिता पर बल देते हुए लूनाचार्स्की ने लिखा है कि "व्यंग्यकार दुर्गणों, बुराइयों और शत्रुओं पर टूट पड़ता है और उसे उपहासास्पद बना देता है। वह आपको अहसास दिलाता है कि आप विजयी हैं और शत्रु कमजोर है, शोचनीय है और आप उसे हँसी में उड़ा सकते हैं। इस तरह नैतिक स्तर पर आप शत्रु से श्रेष्ठ हो जाते हैं।" वस्तुत: यही स्थिति "राग दरबारी" में वैद्यजी के साथ ही रामाधीन, भीखम खेड़वी, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, कालिका प्रसाद, राधेलाल आदि की भी है। नैतिकता और मानवीय गुणों से विपन्न इन पात्रों को उपहासास्पद बनाकर श्रीलाल शुक्ल ने एक सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है।

व्यंग्य की सामाजिक सोद्देश्यता के संदर्भ में 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की स्थिति पर कई लोगों ने उँगली उठाई है, जो बहुत तर्कसंगत नहीं है। इस संबंध में मैथ्यू हॉगर्थ की मान्यता काफी समीचीन प्रतीत होती है। उसके अनुसार "व्यंग्य चेतावनी देता है कि मनुष्य वह खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की असीम क्षमता है। और यदि व्यंग्यकार द्वारा इस सत्य की अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो बहुत पर्याप्त है। मनुष्य के गौरव का वर्णन कवियों का कार्य है।" इस मान्यता को और आगे बढाते हुए नारमन फर्लांग ने लिखा है कि "व्यंग्य कार्य मात्र रोशनी दिखाना है, रास्ता चुनकर देना नहीं। वह शराब की बुराइयों को सामने लाता है, शराब के स्थान पर क्या पीना चाहिए, यह नहीं सुझाता और न ऐसा करना उसका उद्देश्य ही होता है। व्यंग्यकार सीधे-सीधे सुधारक का कार्य नहीं करता बल्कि मूल्यों के पुनर्निधारण का मार्ग प्रशस्त करता है।" 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य इस दृष्टि से सोद्देश्य और सार्थक सिद्ध होता है।

जहाँ तक चुहलबाजी का संबंध है, वह कहीं-कहीं 'राग दरबारी' में जरूरत से ज्यादा दिखायी देती है। आइए, इसके लिए 'राग दरबारी' से कुछ उदाहरण लेते हैं। गाँव के किनारे के

तालाब की गंदगी का यथार्थ, किन्तु व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करने के बाद उपन्यासकार मानव द्वारा पैदा की गयी गंदगी का चित्रण करते हुए लिखता है, "गंदगी की कमी को पूरा करने के लिए दो दर्जन लड़के नियमित रूप से शाम सबेरे और अनियमित रूप से दिन के किसी भी समय **पेट के स्वेच्छाचार से पीड़ित** होकर तालाब के किनारे जाते थे और - **ठोस, द्रव तथा गैस** - तीनों प्रकार के पदार्थ उसे समर्पित कर, हलके होकर, वापस लौट जाते थे।" इसके आरम्भ में लेखक ने 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है' जैसी मैथिलीशरण गुप्त की काव्य पंक्ति का 'अपकर्ष' के सहारे उल्लेख करते हुए तालाब के किनारे की जिस मानवकृत गंदगी का चित्र प्रस्तुत किया है, वह गंदगी की अपेक्षा परिहास के हावी हो जाने की सूचक है। शिवपाल गंज के बस अड्डे की गंदगी के चित्रण में भी उपन्यासकर ने यही पद्धति अपनायी है, "सुबह होते ही, 'शर्मदार के लिए सींक की आड़ भी काफी होती है', इस सिद्धान्त पर वहाँ उगने वाली घास के हर तिनके के पीछे एक-एक शर्मदार आदमी छिपा हुआ नज़र आता था। बहुत ऐसे भी लोग थे जो, 'भाइयों और बहनों, मेरे पास छिपाने को कुछ नहीं है', वाली सच्चाई से बिल्कुल खुले में बैठकर और सींक की आड़ भी न लेकर अपने-आपको पेश करने लगते थे। इस मौके का फायदा उठाने के लिए शिवपाल गंज के सभी पालतू सुअर, सबेरे-सबेरे उधर ही पहुँच जाते थे। वे आदमियों द्वारा पैदा की गयी गंदगी को आत्मसात करते, उसे इधर-उधर छितराते और वहाँ की हवा को बदबू से बोझिल बनाने की कोशिश करते।.....इधर बस के अड्डे पर बैठे हुए मुसाफिर नाक पर कपड़ा लपेट कर कभी जैन धर्म स्वीकार करने को तैयार दिखते, कभी सुअरों की गुरगुराहट सुनते हुए वाराह-अवतार की कल्पना में खो जाते। वातावरण बदबू और धार्मिक संभावनाओं से भरा-पूरा था।"

वस्तुस्थिति के साथ ही मनोदशाओं के चित्रण में भी उपन्यासकार ने प्राय: व्यंग्य का ही सहारा लिया है। जमीन के प्रति किसानों के सहज प्रेम पर वाग्वैदग्ध्य और कटाक्ष के सहारे उपन्यासकार की टिप्पणी है, "किसान को, जैसा कि 'गोदान' पढ़ने वाले और 'दो बीघा जमीन' जैसी फिल्में देखने वाले पहले से ही जानते हैं, जमीन बहुत प्यारी होती है। यही नहीं, अपनी जमीन के मुकाबले दूसरे की जमीन ज्यादा प्यारी होती है।.....ये बातें 'गोदान' में इतनी साफ नहीं लिखी गयी हैं और बम्बइया फिल्मों में - शायद कृश्न चन्दर और ख्वाजा अहमद अब्बास के डर से - या प्रगतिशीलता के जोश में चास फीसदी अंधे हो जाने के कारण या सिर्फ-जहालत के कारण - साफ तौर पर नहीं दिखायी गयी हैं। इसलिए इन्हें जरा सफाई से कहना पड़ा, अगर्चे अपने देश में सफाई का काम कलाकारों का नहीं है, फिर भी.....।" वस्तुत: इस प्रकार की व्यंग्यात्मक टिप्पणियों का सम्बंध मात्र वस्तुस्थिति के उद्घाटन तक सीमित न होकर एक बृहत्तर साहित्यिक-सामाजिक संदर्भ को भी रेखांकित करने में है। इन्हें मात्र चुहलबाजी कहकर नज़रन्दाज नहीं किया जाना चाहिए। इसी तरह के न जाने कितने चित्रण 'राग दरबारी' में भरे पड़े हैं, जो वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण के साथ उसे मनोरंजक भी बनाते हैं और बृहत्तर संदर्भों से भी जोड़ते हैं। अत: हम कह सकते हैं कि 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य का स्वरूप उपन्यासकार के लक्ष्य, उसकी बहुज्ञता और निजी अनुभव-सम्पन्नता के अनुरूप ही है।

14.4 'राग दरबारी' का यथार्थ और व्यंग्य शैली की सार्थकता

14.4.1 वस्तुस्थितियों का मनोभावों के सम्मूर्तन के लिए व्यंग्य

राग दरबारी के आरंभ से ही व्यंग्य धारा प्रवाहित होने लगती है। सड़क पर खड़े ट्रक के बाहरी ढाँचे का उल्लेख किए बिना ही लेखक एक भावप्रवण चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करता है, "उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।" सड़क के किनारे पेट्रोल पंप के पास की खस्ताहाल दुकानों का यथार्थ चित्रण करते हुए वह मिठाइयों के बारे में अपनी व्यंग्यात्मक टिप्पणी करता है,".....जो दिन-रात

मक्खी-मच्छरों के हमलों का बहादुरी से मुकाबला करती थीं। वे हमारे देशी कारीगरों के हस्त-कौशल और उनकी वैज्ञानिक दक्षता का सबूत देती थीं। वे बताती थीं कि हमें एक अच्छा रेजर-ब्लेड बनाने का नुस्खा भले ही न मालूम हो, पर कूड़े को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों में बदल देने की तरकीब सारी दुनिया में अकेले हमीं को आती है।''

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में प्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य के किसी महत्वपूर्ण उपकरण का सहारा नहीं लिया गया है, फिर भी इन्हें अतिरंजना और अपकर्ष का सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है। ट्रक और मिठाइयों की स्थिति हमारे सामने उनके यथार्थ को मूर्त कर देती है। इसी प्रकार बस अड्डे की गंदगी, गाँव के बगल के तालाब, चमरही बस्ती आदि के यथार्थ को उद्घाटित करने में भी राग दरबारी में इसी पद्धति का सहारा लिया गया है। एक नेता द्वारा अपनी नकल प्राप्त करने के लिए तहसील के सामने झोपड़ी डाल कर भूख हड़ताल करने और अखबार में नाम छपने का प्रलोभन देने के सुझाव पर लंगड़ की खुली हँसी पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, ''लंगड़ इस बार जैसी हँसी हँसा वह सिर्फ वैष्णवजन की न थी। उस पर कबीर स्कूल, वर्धा स्कूल और सेवापुरी स्कूल की छाप तो थी ही, कुछ लखनऊ स्कूल का भी असर था, जिसका इसके सिवा कोई जवाब नहीं होता कि आप भी दाँत खोलकर 'हें हें हें' करने की कोशिश करें।'' यहाँ केवल लंगड़ की साधारण हँसी ही नहीं वरन् नेता के विषय में उसकी समझ भी मूर्त हो गयी है।

वैद्य जी और बद्री से डाँट खाये रुप्पन की मनोदशा को मूर्त करने के लिए उपन्यासकार की टिप्पणी है, ''सभी मशीनें बिगड़ पड़ी हैं। सब जगह कोई-न-कोई गड़बड़ी है। सड़कों पर सिर्फ कुत्ते, बिल्लियाँ और सुअर घूमते हैं। **हवा सिर्फ धूल उड़ाने के लिए चलती है।** आसमान का कोई रंग नहीं, **नीलापन उसका फरेब है।** बेवकूफ लोग बेवकूफ बनाने के लिए बेवकूफों की मदद से बेवकूफों के खिलाफ बेवकूफी करते हैं। घबराने की, जल्दबाजी में आत्महत्या करने की जरूरत नहीं। बेईमान और बेईमानी सब ओर से सुरक्षित है।'' यह रुप्पन की अनमनी मनोदशा का एक बाह्य बिम्ब है, जो उसके आन्तरिक ऊहापोह और अंततः सान्त्वना का संकेत करता है। स्थूल यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासकार ने एक भिन्न पद्धति अपनाई है। सनीचर द्वारा खोली **गयी नयी दुकान** की वास्तविकता का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करते हुए उसने लिखा है, ''दुकान पर पान-बीड़ी से लेकर आटा, दाल, चावल, गरम मसाला आदि सब कुछ था जो खुले **आम खरीदा** और खाया जाता है। **यह तो राजनीति का वह पहलू था, जो मेनीफेस्टो में लिखा जाता है। इसके** बाद वह पहलू आता था जो पार्टी की बैठकों में गुप्त मंत्रणा के रूप में प्रकट होता है और जो सिर्फ विश्वस्त सूत्रों को ही मालूम हो पाता है। उसके भीतर वे चीजें आती थीं जो खुलेआम खरीदी तो नहीं जाती थीं, पर खायी जा सकती थीं। इस कोटि के माल में बहुत सी अंग्रेजी दवाइयाँ थीं, जिनका उद्गम स्थानीय अस्पताल के स्टोर में था। इन्हीं में पाउडर वाले अमरीकी दूध के डिब्बे थे, जिनका उद्गम स्थानीय प्राइमरी स्कूल में था। इस तरह के पदार्थों में कुछ वे पदार्थ आते थे, जो सिर्फ छिपाकर खरीदे जा सकते थे और छिपाकर ही इस्तेमाल हो सकते थे। इनमें गाँजा, भाँग और चरस थी।'' वस्तुतः इस पद्धति से श्रीलाल शुक्ल ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त यथार्थ को परत-दरपरत उघाड़ने का सफल प्रयास किया है। पार्टी मेनीफिस्टो और उसके दलीय चरित्र के माध्यम से लेखक ने सनीचर की दूकान के खुले-छिपे सभी पहलूओं को बेनकाब किया है।

14.4.2 गृहीत तथ्यों की पुष्टि के लिए व्यंग्य

श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' में गृहीत तथ्यों की पुष्टि के लिए प्रायः व्यंग्य शैली का सहारा लिया है। तथ्य चाहे किसी पात्र के चरित्र से संबद्ध हो चाहे वातावरण या पृष्ठभूमि के चित्रण से, उपन्यासकार ने सर्वत्र इसी पद्धति का सहारा लिया है। यहाँ उदाहरण के लिए वैद्यजी के आवास की छत के ऊपरी कमरे के दृश्यांकन को लिया जा सकता है, ''छत के ऊपर एक

कमरा था जो हमेशा संयुक्त परिवार की पाठ्य-पुस्तक जैसा खुला रहता था।.....परिवार के सभी लोगों में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का नारा बुलंद करने वाले इस कमरे को देख कर लोगों के मन में स्थानीय संस्कृति के लिए श्रद्धा पैदा हो सकती थी। इसे देख लेने पर कोई भी समाजशास्त्री यह नहीं कह सकता था कि पूर्वी गोलार्द्ध में संयुक्त परिवार की व्यवस्था को कहीं से कोई खतरा है।'' उपन्यासकार का यह निष्कर्ष एक अपेक्षात्मक टिप्पणी के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इस कमरे की आन्तरिक सज्जा का विवरण देते हुए कोने में रखी मुगदरों की जोड़ी, काँच और मिट्टी के बर्तनों में रखे हुए अचार, कमरे के आर-पार बँधी रस्सी पर एक साथ लटके हुए लंगोट और चोलियाँ, अँगोछे और पेटीकोट, वैद्यजी के दवाखाने की खाली शीशियाँ तथा इनके साथ ही रुप्पन बाबू का गुप्त साहित्य समान रूप से प्रतिष्ठित था। रुप्पन के गुप्त साहित्य पर टिप्पणी करते हुए लेखक का कहना है कि "बहुत सी दफ्तरी बातों की तरह गुप्त रहकर भी वह गुप्त नहीं रहता। विशिष्ट और जन-साहित्य की बनावटी श्रेणियों का अतिक्रमण कर वह सबके हृदयों में समान रूप से प्रतिष्ठित है। सुमित्रानंदन पंत की दार्शनिक भाषा में कहा जाए, तो 'मानव और मानव के चिरंतन' संबंधों का ही उसमें वर्णन होता है।'' यहाँ एक प्रकार से आक्षेपात्मक टिप्पणी है, जिसमें गुप्त साहित्य के साथ पंतजी को भी लपेट लिया गया है।

रंगनाथ के आ जाने से इस कमरे के मूल चरित्र में परिवर्तन आ गया है।"रंगनाथ ने आते ही **इसमें अपना व्यक्तिवाद फैला दिया था।**'' क्योंकि इसमें एक स्थायी चारपाई पर एक स्थायी बिस्तर डाल दिया गया था। आलमारी में शोधकार्य से संबधित उसकी किताबें लग गयी थीं, जिसमें गुप्त साहित्य के प्रवेश का निषेध कर दिया गया था। चारपाई से लगी खिड़की खुलने पर बगीचों और खेतों का दृश्य रंगनाथ के व्यक्तित्व को कवित्वमय बना देता था। वह सोचने लगता था कि "उसके सामने न जाने कितने वड्र्सवर्थ, कितने राबर्ट फ्रास्ट, कितने गुरुभक्त सिंह एक आर्केस्ट्रा बजा रहे हैं और उनके पीछे अनगिनत आंचलिक कथाकार मुँह में तुरही लगाए, साँस फुलाए खड़े हैं।'' कटाक्ष और आक्षेप की यह शैली उपन्यास में आद्यंत विद्यमान है, जो इस बात का संकेत करती है कि तत्कालीन समाज का हर व्यक्ति उपन्यासकार को अपना शत्रु ही दिखायी देता है। कहीं भी उसका सहयोगी या उसकी पाँत का कोई व्यक्ति है ही नहीं।

रंगनाथ के मन में यह भ्रम पैदा हो गया है कि गाँव में पीढ़ियों को लेकर कोई विवाद नहीं दिखायी देता। इस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार पाठक को सामाजिक क्षेत्र से हटाकर क्षणभर के लिए साहित्य के क्षेत्र की ओर ले जाते हुए लिखता है, "यह विवाद विशेष रूप से साहित्य और कला के क्षेत्र में ही चल रहा था, क्योंकि औरों के मुकाबले वाद-विवाद के लिए साहित्य और कला के क्षेत्र ही ज्यादा-से-ज्यादा फैलावदार और कम-से-कम हानिकारक हैं। पिछली पीढ़ी के मन में अगली पीढ़ी को मूर्ख और अगली के मन में पिछली को जोकर समझने का चलन वहाँ इतना बढ़ गया था कि अगर क्षेत्र साहित्य या कला का न होता, तो अब तक गृह-युद्ध छिड़ चुका होता।'' इस पद्धति का वह आगे भी सहारा लेता है। अखाड़े से आ रहे बद्री और छोटे पहलवान जिस असावधानी से लंगोट पहने हुए थे, उस पर टिप्पणी करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है, "जिस तरह कला के नाम पर हेनरी मिलर और डी.एच. लारेंस की अश्लीलता को माफ़ी मिल जाती है, उसी तरह भारतीय व्यायाम के नाम पर इन दोनों पहलवानों को यह सब दिखाने की छूट मिल गयी थी।'' इसी तरह गाँव के निकट सन्ध्याकाल में होने वाले गीदड़ों की सामूहिक आवाज पर लेखक की टिप्पणी है, "इससे प्रमाणित होता है कि उनमें सामूहिक रूप से रहने की शक्ति काफी मात्रा में मौजूद है और गाँव के आसपास का सारा जंगल कट जाने के बावजूद - **अपने देश में उखड़े हुए यहूदियों की तरह** - वे कहीं बसने के लिए आन्दोलन जैसा छेड़ने वाले हैं।'' वस्तुत: इस प्रकार के व्यंग्य अधिकांशत: हास्य और चुहलबाजी की वृत्ति के ही परिचायक हैं, जिनमें रचनाकार का कोई गंभीर सरोकार नहीं दिखायी देता। इनका महत्व मनोरंजन या विनोद के साथ ही वातावरण की सृष्टि या पृष्ठभूमि के निर्माण में सहायक हो सकता है।

'राग दरबारी' की उपर्युक्त प्रवृत्ति को देखकर श्रीपत राय जैसे प्रगतिशील साहित्यकार ने इसे 'अतिशय उबाऊ, कुरुचिपूर्ण और कुरचित रचना' बताया और नेमिचंद्र जैन जैसे सुधी समीक्षक ने 'असंतुष्ट, क्षुब्ध व्यक्ति की बेशुमार शिकायतों और खीझ भरे आक्षेपों का अंतहीन सिलसिला' बताया है। लेकिन पाठकों के बीच और बहुत सारे आलोचकों के बीच भी अपनी यथार्थोन्मुखता के कारण 'राग दरबारी' ने एक निजी पहचान निर्मित की है। गाँव समाज में वैद्यजी, बद्री पहलवान, छोटे पहलवान, रामाधीन भीखम खेड़वी, कालिका प्रसाद, राधेलाल, सनीचर, जोगनाथ आदि पात्र अपने जिस कल, बल, छल का परिचय देते हैं - वह पूरे समाज के चरित्रोद्घाटन का एक प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है। इनकी तमाम गतिविधियाँ केवल ग्राम समाज को ही नहीं, वरन् समूचे देश के राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ को अत्यंत कौशल के साथ प्रस्तुत करती हैं। विकृत राजनीतिक-संस्कृति के प्रतीक वैद्यजी पूरे देश के पटल पर एक घातक व्यंग्य हैं। लोकतंत्र के नाम पर प्रजातंत्र का यह नाटक जब तक समाप्त नहीं होता तब तक वैद्यजी और अधिक ताकतवर होते जाएँगे। इस यथार्थ का उद्घाटन 'राग दरबारी' का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य है, जिसे कौशलपूर्वक प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल रहा है।

14.4.3 व्यंग्य के लिए चुनी गई आंचलिक शब्दावली

'राग दरबारी' में यथार्थोद्घाटन के लिए आंचलिक शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यंग्य-कौशल की समुचित योजना की गयी है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि राग दरबारी आंचलिक उपन्यास नहीं है। स्वयं लेखक ने इसे अनआंचलिक उपन्यास कहा है। बावजूद इसके जुआड़ियों, कुश्ती के अखाड़ों, शराब के अड्डों के साथ ही ग्रामीण पात्र अपनी सामान्य बात-चीत, रार-तकरार और हँसी-मजाक के लिए आंचलिक शब्दावली का अत्यंत सटीक प्रयोग करते हैं। ये शब्द अपने स्वरूप, बलाघात, लहजे के कारण अत्यंत सार्थक व्यंग्य का कार्य करते हैं। इस प्रकार के शब्दों के चयन के लिए श्रीलाल शुक्ल को पर्याप्त श्रम करना पड़ा है। इस संबंध में उनका कहना है, "किताब लिखना दिमाग के लिए कठोर और शरीर के लिए कष्टप्रद कार्य है।..... फिर 'राग दरबारी', इसने मुझे छह साल बीमारी की हालत में रखा। उन गँवार चरित्रों के साथ दिन-रात रहते हुए मेरी जबान खराब हो गयी। भद्र महिलाएँ खाने की मेज पर कभी-कभी भौंहें उठाकर देखने लगीं। मैं परिवार से और परिवार मुझसे कतराने लगा।" 'राग दरबारी' की यह रचना-प्रक्रिया, शब्द चयन के लिए लेखक के कठोर श्रम का परिचायक है। इसी कारण वह गँवारों के असंस्कृत ठेठ शब्दों का इतना जीवन्त प्रयोग कर सका है। ये शब्द आलोच्य की आलोचना के लिए ऐसे धारदार हथियार का कार्य करते हैं, जो उसे छील-छालकर उसके आंतरिक सच को पाठक के सामने प्रस्तुत कर देता है। श्रीलाल शुक्ल चुटकी भी लेते हैं, मखौल करते हैं और यकायक गंभीर होकर टिप्पणी भी करने लगते हैं। इसके लिए कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। जब रंगनाथ ने फ्लश के खिलाड़ियों के पेयर के लिए 'जोड़', फ्लश को 'लंगड़ी', रन को 'दौड़', रनिंग फ्लश को 'पक्की' और ट्रेल को 'टिरैल' कहते सुना तो उसने सोचा, "अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी में ढालने की समस्या को सही जबाब यही है।" इस पर उपन्यासकार के माध्यम से रंगनाथ की टिप्पणी है :

"देश के पेशेवर कोशकारों और उनकी समितियों का जाल बिछा है।.....एक ओर कमरे के भीतर एक नयी भाषा का निर्माण हो रहा है, दूसरी ओर इतना वक्त भी लग रहा है कि निर्माणकर्ता पेंशन पाने भर की नौकरी पूरी कर लें। इस तरह बनायी गयी भाषा का कोई अर्थ नहीं है, सिवाय इसके कि कहा जा सकता है कि 'लो भाई, जो शै हमारी अंग्रेजी में थी, वह तुम्हारी भाषा में आ गयी।' भाई उसे लें या न लें, इससे किसी को कोई मतलब नहीं।... .....क्यों न इन चार-पाँच गँजहों की एक समिति बनाकर दिल्ली में बैठा दी जाए। ये बड़े-बड़े परिभाषिक शब्दों के लिए, सिर्फ सामाजिक स्वीकृति के आधार पर अपनी मातृभाषा के कुछ शब्द निकालकर पेश कर देंगे और कुछ न हुआ तो ट्रेल को 'टिरैल' बनाने में क्या देर

लगती है।'' वस्तुत: यहाँ राष्ट्रीय स्तर पर कोश-निर्माण की पूरी प्रक्रिया पर कटाक्ष के द्वारा आक्षेप है।

छोटे पहलवान एक विशेष सन्दर्भ में 'लपक गए', 'अण्डा देने', 'धोबीपाट मारने', 'टें बोल जाने', 'बाल उखाड़ने', 'राँड़ों की तरह फाँय-फाँय करने', 'खूँटा गाड़कर बैठ जाने' आदि शब्दों का प्रयोग कर रहे थे। ''रंगनाथ को हिन्दी भाषा के इस रूप का विशेष ज्ञान नहीं था। उसने मन में सोचा, लोग यों ही कहा करते हैं कि हमारी हिन्दी में सशक्त शब्दों की कमी है। यदि हिन्दी के विद्वानों को छोटे पहलवान की तरह अखाड़े में चार महीने रखा जाए तो व्यक्तिगत असुविधा के बावजूद वहाँ की मिट्टी के जर्रे-जर्रे से इस तरह के शब्दकोश निकालने लगेंगे।'' इसके बाद छोटे पहलवान का जब धारा-प्रवाह वक्तव्य शुरू होता है, तो उसमें 'फुट्टफैरी', 'लासेबाजी', 'नक्शेबाजी', 'वस्ताद', 'टाँय-टाँय', 'गूदा निकलना', 'तिड़ी-बिड़ी',. 'ठाँसना', 'कल्लाना' आदि जीवन्त शब्दों की झड़ी लग जाती है।

अपने बाप कुसहर प्रसाद को बुरी तरह पीटने के बाद जब छोटे पहलवान को समझाया जाता है कि अपने बाप को कहीं इस तरह मारा जाता है, तो बिफर कर कहता है, ''साला बाप जैसा बाप हो, तब तो एक बात भी है।'' और यह कहने पर कि उसने तुम्हें पैदा किया है, पाल-पोस कर बड़ा किया है तो छोटे उत्तर देता है, ''कोई हमने स्टाम्प लगाकर दरखास्त दी थी कि हमें पैदा करो। चले साले कहीं के पैदा करने वाले।'' 'साले' शब्द छोटे पहलवान का तकिया कलाम है, जिसे वह गाली नहीं मानता। अपने पिता को पीटने के बाद गाँव की पंचायती अदालत में पेश होने पर जब छोटे पहलवान श्रवण कुमार की संज्ञा से प्रताड़ित किया जाता है तो उसे बहुत बुरा लगता है क्योंकि कंधे पर काँवर रखे हुए माँ-बाप को इधर-उधर मुर्गों की तरह लटकाकर चलना एक शर्मनाक बात थी। अत: वह कहता है, ''इस खानदान में सब साले श्रवणकुमार ही तो होते आए हैं।'' इस पर जब एक पंच आपत्ति करता है कि ''गाली-गलौज न करो पहलवान, इससे अदालत की तौहीन होती है।'' तो अपनी भलमनसाहत का परिचय देते हुए छोटे कहता है, ''असली गाली अभी तुमने सुनी नहीं है पण्डित जी, घुस जाती है तो कलेजा छिल जाता है।''

पिता-पुत्र के रूप में वैद्य-बद्री पहलवान का विवाद शुरू होता है तो बद्री पहलवान भी थोड़ी परिष्कृत शब्दावली में छोटे पहलवान का ही रुख अपनाते हैं। वैद्यजी जब बद्री पर आरोप लगाते हैं कि ''इतने समझदार होकर तुम गयादीन की लड़की से फँस कैसे गए..... मेरी नाक कट कर गिर जाएगी।'' इस पर बद्री पहलवान का उत्तर वैद्यजी की आन्तरिक कलई खोलने के लिए पर्याप्त है, ''नाक वाली बात न करो! नाक है कहाँ? वह तो पण्डित अजुध्यापरसाद के दिनों में ही कट गयी थी।..... फँसना-फँसाना चिड़ीमार का काम है। तुम्हारे खानदान में तुम्हारे बाबा अजुध्यापरसाद रघुबरा की महतारी से फँसे थे। इसे कहते हैं फँसना। मैं बाबा अजुध्यापरसाद की चाल नहीं चल सकता। जो कुछ करूँगा कायदे से करूँगा। इधर-उधर की गिचिर-पिचिर मुझे पसंद नहीं।'' यह उत्तर, इस प्रकार की पारिवारिक बात-चीत, वैद्यजी की अन्दरूनी गाथा का उद्‌घाटन कर उनकी कलई ही नहीं उतारती, वरन् उन्हें नितांत कमजोर सिद्ध करती है। अपने छोटे बेटे रुप्पन के आचरण पर आक्षेप करने के बाद उन्हें उत्तर मिलता है कि ''मुझे भी तुम्हारे आचरण की खबर है।'' इससे वे चुप्पी साध लेते हैं। इसके माध्यम से व्यंग्यकार इस तथ्य को भी संकेतित करता है कि सारे गाँव-समाज को अपनी मुट्ठी में बन्द किए और शहर के ऊँचे अधिकारियों की नब्ज़ पर नियंत्रण रखने वाले वैद्यजी वस्तुत: कमजोर हैं। अत: उन्हें परास्त करना संभव है।

आंचलिक शब्दावली के अतिरिक्त उपन्यासकार ने 'राग दरबारी' की कथा में अपने वाग्वैदग्ध्य का पूरा परिचय दिया है। इसके माध्यम से उसने ग्राम-समाज के परिवेश, राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत आने वाली अर्थनीति, शिक्षा नीति, संस्कृति नीति के साथ ही विदेश नीति और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठने वाले अनेक मुद्दों को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है।

14.5 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाएँ

'राग दरबारी' एक प्रतीकात्मक उपन्यास है, लेकिन इसी प्रतीकात्मकता का एक महत्वपूर्ण आधार व्यंग्यात्मकता ही है। कविता, कहानी, निबंध आदि काव्य एवं गद्य-विधाओं में व्यंग्य शैली का उपयोग अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से किया जा सकता है। लेकिन उपन्यास जैसी युग-जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने वाली गद्य विधा में व्यंग्यात्मक शैली का समुचित उपयोग प्राय: कठिन रहा है। यही कारण है कि 'राग दरबारी' अपनी तरह का हिन्दी में संभवत: पहला उपन्यास है, जिसकी शैली आद्यंत व्यंग्यात्मक है। व्यंग्यधर्मिता को औपन्यासिक गरिमा प्रदान करने वाला यह अकेला उपन्यास है। अत: पारंपरिक उपन्यास-कला के अभ्यस्त पाठक-आलोचक की रुचि को इससे एक धक्का लगा है। युगाभिव्यक्ति, चरित्र-विधान, भाषा-शैली आदि के समुचित मूल्यांकन के लिए समीक्षकों को नयी चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। पाठक के सामने जो विशेष दिक्कत पैदा हुई है, वह है कथा-रस की निरंतरता का अभाव। इसके लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है :

"इण्डोलॉजी के शोधकर्ता को सबसे पहले इस विषय के शोधकर्ताओं का शोध करना पड़ता है।.. .....इस समय नीम पर फैली धूप की मार्फत उनका अध्ययन कर रहा था। उसके दाएँ मार्शल और बाईं ओर कनिंघम विराजमान थे। विण्टरनित्ज़ बिल्कुल नाक के नीचे थे। कीथ पीछे की ओर पायजामें से सटे थे। स्मिथ पायताने की ओर ढकेल दिए गए थे और वहीं उल्टी-पुल्टी हालत में राइसडेविट की झलक दिखायी दे रही थी। पर्सी ब्राउन को तकिए ने ढक लिया था। ऐसी भीड़-भाड़ में काशीप्रसाद जायसवाल बिस्तर की एक सिकुड़न के बीच औंधे मुँह पड़े थे। भण्डारकर चादर के नीचे से कुछ सहमें हुए झाँक रहे थे। इण्डोलॉजी की रिसर्च का समा बँध गया था।" कथा-प्रवाह को रोकने वाले ऐसे बहुत से स्थल उपन्यास में आए हैं, जो पाठकीय रुचि को बाधित करते हैं। वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किए गए ऐसे विस्तृत विवरण औपन्यासिक शिल्प को खण्डित करते हैं। बावजूद इसके, अपनी व्यंग्यात्मक शैली के कारण ऐसे वर्णन मनोरंजक ही नहीं, वरन् यथार्थ का साक्षात्कार कराने वाले और ज्ञानवर्धक भी हो सकते है। हास्य और आक्षेप के विरोधी उपकरणों के कौशलपूर्ण मिश्रण से ऐसे स्थलों की पठनीयता बनी रहती है। अत: औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से इसे बड़ी त्रुटि के रूप में स्वीकार करना बहुत संगत नहीं है।

व्यंग्य के सीमा-निर्धारण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कसौटी है सोद्देश्यता के संदर्भ में उसके सदुपयोग की स्थिति। 'राग दरबारी' के सभी पात्र लेखक के उपहास के ही पात्र बने हैं। जबकि रुप्पन और रंगनाथ में से किसी एक को वह अपनी सहानुभूति दे सकता था। 'बिस्रामपुर का संत' में उसने विवेक और सुन्दरी के साथ ऐसा किया भी है। इसलिए कुछ आलोचकों ने 'राग दरबारी' में अपनायी गयी व्यंग्य शैली में कल्पनाशीलता का पूरा समावेश होते हुए भी सामाजिक दृष्टि का अभाव देखा है। कहीं भी उन्हें भविष्यकामी प्रेरणा का स्रोत नहीं दिखायी देता। इस दृष्टि से यदि हम हरिशंकर परसाई और श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य-दृष्टि की तुलना करें तो दोनों के अन्तर को आसानी से समझ सकते हैं। अपनी व्यंग्य-प्रक्रिया में परसाई देश की राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक विसंगतियों पर अतिशय आक्रामक रूख अपनाते हुए भी सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए समाज के आमूल परिवर्तन की अपरिहार्यता को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार की परिवर्तन कामना का श्रीलाल शुक्ल में पर्याप्त अभाव दिखायी देता है। उनकी सारी योजना सुधार तक ही सीमित है। एक सम्भ्रान्त और विशिष्ट नागरिक की तरह वे राष्ट्र में व्याप्त सभी क्षेत्रों की अराजकता को आक्षेप और उपहास की मुद्रा में देखते और उद्घाटित तो करते हैं, लेकिन अपने आभिजात्य को कायम रखते हुए वे अपने को कहीं भी किसी से जोड़ नहीं पाते। जबकि हरिशंकर परसाई अपनी प्रखर राजनीतिक चेतना के कारण किसी के विरोध में, तो किसी के साथ खड़े दिखायी देते हैं। यह संश्लिष्टता श्रीलाल शुक्ल में नहीं मिलती।

उपर्युक्त कुछ आरोपों-आक्षेपों के बावजूद श्रीलाल की व्यंग्य शैली की अपनी सार्थकता है। आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों की तरह वे वर्तमान व्यवस्था की कलई खोल कर लोगों के लिए प्रकाश-स्तंभ का कार्य तो करते ही हैं, जिससे एक चेतावनी भी मिलती है। पूँजीवादी चेतना के तंग दायरे में विकसित पश्चिमी चिन्तकों ने भी अधिकांशत: व्यंग्य की इसी भूमिका को रेखांकित किया है। नारमन फर्लांग ने 'इंगलिश सेटायर' पर विचार करते हुए अपना अभिमत दिया है कि "व्यंग्य का कार्य मात्र रोशनी दिखाना है, रास्ता चुनकर देना नहीं। वह शराब की बुराइयों को सामने लाता है, शराब के स्थान पर क्या पीना चाहिए यह नहीं सुझाता।" प्राय: यही दृष्टि 'राग दरबारी' में भी अपनाई गयी है। लेकिन वर्तमान युग की अत्यंत जटिल और क्रूर व्यवस्था शोषण, की नित नयी युक्तियों के आविष्कार के चलते बहुसंख्यक जनता की अत्यंत पिछड़ी हुई चेतना के परिवेश में एक संवेदनशील कलाकार के रूप में व्यंग्यकार के लिए रोशनी दिखाने के साथ ही एक नयी दिशा का संकेत भी आवश्यक हो गया है। अपनी सम्पूर्ण विदग्धता और अद्‌भुत कौशल के बावजूद 'राग दरबारी' में इसका नितांत अभाव है।

14.6 सारांश

इस इकाई में हमने सबसे पहले व्यंग्य के शब्दार्थ पर विचार करते हुए उसे संस्कृत काव्यशास्त्र से भिन्न अंग्रेजी के 'सेटायर' के समानार्थी के रूप में प्रस्तुत किया है। व्यंग्य के संबंध में यूरोपीय एवं हिन्दी के चिंतकों की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए उसके मूलभूत लक्षणों के निरूपण के साथ ही उसकी प्रमुख विशेषताओं का भी विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इस प्रक्रिया में उसकी अभिव्यक्ति क्षमता को भी स्पष्ट करने का हमने प्रयास किया है।

व्यंग्य के व्यापक स्वरूप का उद्‌घाटन करते हुए उसके विभिन्न उपकरणों, रूपों और छायाओं पर अलग-अलग विचार करते हुए उनके वास्तविक स्वरूप और महत्व के उद्‌घाटन का प्रयास किया गया है। इस प्रक्रिया में हास्य, परिहास, उपहास, वाग्वैदग्ध्य, वाग्दंश, कटाक्ष आदि को व्यंग्य के सहायक के रूप में जाँचा-परखा गया है।

आगे चलकर हमने व्यंग्य की साहित्यिक-सामाजिक उपयोगिता को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में इस प्रश्न पर भी विचार किया गया है कि व्यंग्य को साहित्य में एक शैली रूप में स्वीकार किया जाए या स्वतंत्र साहित्य-विधा के रूप में। अब तक समूची वस्तुस्थिति को देखते हुए तो व्यंग्य को एक शैली के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। लेकिन हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, बरसाने लाल चतुर्वेदी, लतीफ घोंघी के साथ ही श्रीलाल शुक्ल आदि की बहुत सी व्यंग्य-रचनाओं को निबंध, कहानी, संस्मरण, जीवनी, लघुकथा आदि पूर्वस्वीकृत विधाओं में समाविष्ट करना कठिन है। इसे देखते हुए व्यंग्य को विधा और शैली - दोनों ही रूपों में स्वीकृति देना अधिक संगत है।

इस इकाई में व्यंग्य के स्वरूप पर विचार करते हुए 'राग दरबारी' में उसके नकारात्मक सकारात्मक स्वरूप के साथ ही उसके उपहासात्मक-आक्रामक स्वरूप को भी उद्‌घाटित किया गया है। 'राग दरबारी' के यथार्थोद्‌घाटन में व्यंग्य शैली के योगदान पर कई कोणों से विस्तार से विचार करते हुए हमने 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सार्थकता की जानकारी दी है। इससे आप अच्छी तरह समझ सकते हैं कि वस्तुस्थितियों, मनोदशाओं और गृहीत तथ्यों की अभिव्यक्ति में व्यंग्य शैली कितनी उपयोगी है। इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए 'राग दरबारी' में प्रयुक्त आंचलिक शब्दावली के महत्व पर भी विचार गया है।

इस इकाई का अंतिम महत्वपूर्ण मुद्दा है - 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य की सीमाएँ। इसके अन्तर्गत 'राग दरबारी' की व्यंग्य-बहुलता के औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार किया गया है। इस प्रक्रिया में औपन्यासिक शिल्प को कहाँ, कितना आघात लगा है - इसे भी स्पष्ट किया गया है।

14.7 अभ्यास प्रश्न

1. व्यंग्य शब्द का वास्तविक अभिप्राय स्पष्ट करते हुए उसकी मूलभूत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

2. 'राग दरबारी' में चित्रित यथार्थ में व्यंग्य शैली के योगदान पर विचार कीजिए।

3. 'राग दरबारी' में प्रयुक्त व्यंग्य के औचित्य-अनौचित्य को स्पष्ट कीजिए।